तारतम मंजरी

वर्ष २ अंक १ मई २०१६ पृष्ठ २८

ब्रह्मज्ञान ही अमृत है

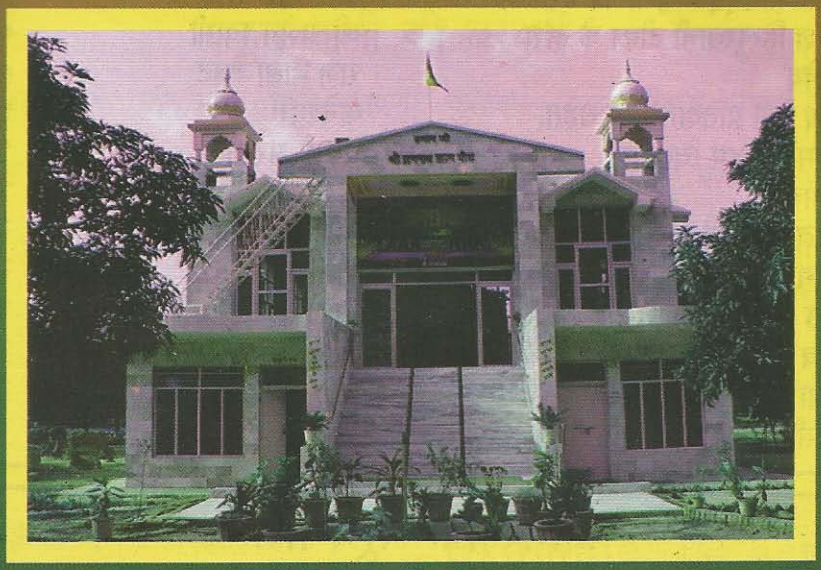

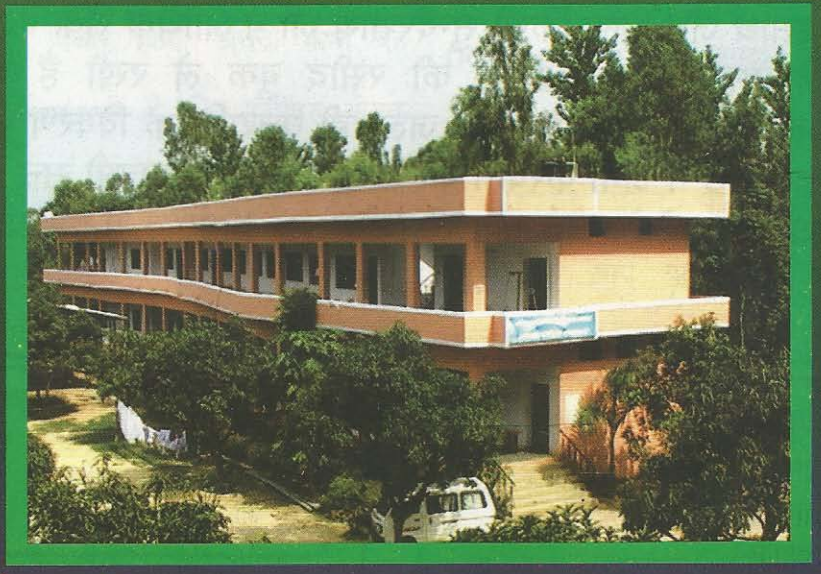

प्रेम ही जीवन है

स्वत्वाधिकारी :

श्री प्राणनाथ ज्ञान पीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, जिला-सहारनपुर, उ.प्र.

फोन नं. : ०१३३१.२४६०००, ८६५०८५१०१०

ई-मेल : shriprannathgyanpeeth@gmail.com. web : spjin.org

अनुक्रमणिका

इस अंक में.....

०१. सम्पादकीय (इन वाणी की बरकते)	अमरलाल सेठी	०१
०२. कलश हिन्दुस्तानी टीका के अंश	श्री राजन स्वामी	०५
०३. अस्तेय	राज बाला बेहट	०६
०४. सच्च प्रेमी प्रतिदान नहीं चहता	कनेश्वर	१३
०५. प्रीतम प्रीयतम चितवन	बबली सरसावा	१४
०६. आत्मबोध	.....	१८
०७. तारतम का भी तारतम	ज्योति जी सिरसा	२२
०८. आत्म प्रबंध	शशांक जी	२३
०९. श्रेष्ठ कर्म	अशोक जी	२४
१०. गरीब कौन	.....	२५
११. सच्चा सुख	.....	२६
१२. भारतीय संस्कृति की सनातनता	.....	२७

आवश्यक सूचनायें

प्यारे सुन्दरसाथ जी! जिस किसी सुन्दरसाथ जी ने आर्थिक सेवा एकत्र करने हेतु पिछले सत्र या सन् 2015 की रसीद बुक ले रखी हैं कृपया वे अपनी–अपनी सत्र की रसीद बुक जल्द ही धनराशि के विवरण सहित श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ में जमा करवाने का कष्ट करें तथा आगामी सन् 2016 की कोई भी रसीद काटने हेतु नये सत्र की रसीद बुक ज्ञानपीठ से पुनः प्राप्त करें।

प्रणाम जी

प्रकाशक :–
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट,
नकुड़ रोड, सरसावा
जिला–सहारनपुर, उत्तर प्रदेश
फोन – 01331 246000, 246871
वेबसाईट :– www.spjin.org
ई मेल :– shriprannathgyanpeeth@gmail.com

सदस्यता शुल्क

भारत में	विदेश में
वार्षिक 110 रू.	.....
आजीवन 1000 रू.	.....

लेख में प्रगट किये गये विचार लेखक के व्यक्तिगत विचार हैं इनके प्रति सम्पादक, प्रकाशक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्यायक्षेत्र सहारनपुर होगा।

सम्पादकीय

इन वाणी की बरकतें

प्राणाआधार सुन्दरसाथ जी, हम सभी श्रावण पंचमी से लेकर लगभग एक माह तक सम्पूर्ण बीतक साहब का श्रवण करते हैं। यह परम्परा लगभग साढ़े तीन सौ सालों से सभी हमारे धार्मिक स्थानों पर चल रही है। कुछ सुन्दरसाथ अपने घरों में इसका अध्ययन, पठन तथा मनन करते हैं। क्या हमने कभी इस बात पर भी ध्यान दिया है, विचार किया अथवा कभी यह जानने की कोशिश की है कि आखिर बीतक साहब क्यों लिखी गई, इसके लिखने की क्या आवश्यक्ता थी या इसका क्या उद्देश्य था ?श्री जी ने इस बीतक को लिखने के लिए लाल दास जी को क्यों कहा ?यह बात परिमाणित है कि विज्ञान का विद्यार्थी Theory के साथ Practical भी करता है, अन्यथा उसका विषय अधूरा रहता है। ठीक इसी रूप में श्री कुलजम स्वरूप लिखा गया, उसके सैद्धान्तिक पक्ष को व्यवहारिक रूप देने के लिए बीतक साहिब की आवश्यक्ता थी। आप यूं कह सकते हैं कि श्री कुलजम स्वरूप की वाणी श्री जी का सैद्धान्तिक पक्ष है तो बीतक साहब उनका व्यवहारिक रूप है। कहते हैं कि An Example is better than perception. कोरे उपदेश से क्रियात्मक रूप कहीं बेहतर है। श्री कुलतम स्वरूप का गम्भीरता से अध्ययन, पठन, पाठन, मनन या चिन्तन करने पर आप पाएंगें प्रेम, श्रद्धा, आस्था, विश्वास, वेदना विरह की पीड़ा, पूर्ण समर्पण, सहन शीलता, संवेदना, आज्ञापालन, अहंकार मर्दन, सादगी अर्थात् गरीबी का भाव विनम्रता हृदय की निर्मलता Thanks Giving अर्थात् शुक्राना समुदाय अर्थात सहस्तित्व का

भाव, राष्ट्र के प्रति अपना कर्त्तव्य तथा समर्पित भावना, जनजीवन का कल्याण, पददलित समाज का उत्थान, जाति पाति के भेद भाव का उन्मूलन आदि भावनाओं को उजागर किया गया है। श्री जी ने अपने स्वयं के जीवन में इनको अपना कर बीतक साहब के द्वारा सुन्दरसाथ को प्रबोधित किया। उनका सिद्धान्त पर उपदेश कुशल बहुतेर नहीं था। बीतक साहब में वर्णित कुछ घटनाओं के द्वारा इन का स्पष्टी करण हुआ है। श्री धनी देवचन्द्र जी को किसी नए सुन्दरसाथ के आगमन की कितनी प्रसन्ता होती थी। क्या आज हममें भी वही भावना है ?मेहराज (शिष्य के रूप में) श्री धनी देवचन्द्र जी के चरणों के सानिध्य आने पर अपनी आस्था , श्रद्धा, विश्वास और गुराज्ञा पालन की परिकाष्ठा दिखाई। उनका आदेश पाते ही अहमदाबाद तथा अरब मुल्क में जाने में ज़रा भी देर नहीं लगाई। कोई भी बाधा, गुरूआज्ञा में विरोधक नहीं बन सकी। सेवा का भाव पूर्ति के लिए अपने वेतन से सुन्दरसाथ के लिए खाद्य सामग्री तथा वस्त्रादि और बिहारी जी के लिए सुन्दर वस्त्र आभूषण बना कर अपने सतगुरु के नाम का भण्डारा करने का प्रबन्ध किया। दीवान गिरी के पद पर रहते जब उन्हें देश पर आने वाले संकट का इलहाम हुआ तो अहमदाबाद की जेल में स्वयं को प्रस्तुत कर दिया। यह था उनमें कुर्बानी का भाव।

अपने सतगुरु के सानिध्य में रहते ऐसा अनुभव हुआ कि मेरे सद्गुरु जी को तो परमधाम दिखाई देता है मुझे क्यों नहीं ?इस क्यों नहीं ने उन्हें मेहराज से महामति बना दिया। उनके अन्दर एक ऐसी Burning Desire उत्कण्ठा, ऐसी तीव्र इच्छा ने एक दृढ संकल्प की लौ का रूप धारण कर विरह वेदना पीड़ा की भट्टी की ज्वाला में तपनें लगे। यह सच है कि जैसे इच्छा रूपी बीज बाह्य परिस्थितियों से विकसित होता हुआ एक विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि जिस बीज में जितनी शक्ति होती है, उतना ही वह नीचे गहराई में और ऊपर आकाश में अपनी विशालता को प्रकट करता है। क्या हममें भी

ऐसे बीज रूप की इच्छा प्रकट हुई है।

जो जितना महान होता है उसके व्यवहार में उतनी ही विनम्रता और उदारता होती है। श्री जी ने जूनागढ़ के हरिजी व्यास, ठठ्ठा नगर के चिन्तामणी तथा मेरता के लाभानन्द यति जैसे विद्वानों से शास्त्रार्थ करने में कितनी विनम्रता दिखाई जो हमारे लिए अनुकरणीय है। चरणों या पांव लाग कहे श्री इन्द्रावती। अक्षरातीत होते हुए कितनी Humbleness ! उदय पुर, मन्दसौर के प्रसंग में अहंकार मर्दन, जाति पाति का भेद भाव समाप्त कर सभी को एक रस कर दिया। भिक्षा मंगवा कर सभी की पद प्रतिष्ठा की लोलुपता को समाप्त कर दिया। पहले स्वयं सिर मुण्डवाया - चीरक वस्त्र धारण किए तब दूसरों को ऐसा करने को कहा।

परमात्मा ने हमें अनगणित सौगातें, न्यामतें बखशी हैं यह सुन्दर काया, धन, दौलत, बंगला कोठी प्यारा और दुलारा परिवार दिया है। क्या कभी हमने एकान्त में बैठकर एक आध घड़ी उस परब्रह्म का शुक्रिया अदा किया है ?इसका अहसास हमें आकोट का प्रसंग दिलाता है।

धाराभाई जैसे बिहारी जी द्वारा उपेक्षित सुन्दरसाथ को गले लगाकर यह संदेश देना सभी सुन्दरसाथ मेरे लिए एक जैसे है (जो कोई लूला पांगला साथ, इन्द्रावती न छोड़े उसका हाथ।)। क्या हम अपने अन्दर ऐसी सम्वेदना उत्पन्न कर सके हैं ?अगर नहीं तो क्या फायदा बीतक सुनने का ?सब व्यर्थ है अभी भी हम जाति पाति की दीवारे नही लांघ पाएं। परिक्रमा ग्रन्थ को केवल लिखा ही नहीं अपितु प्रत्येक सुन्दरसाथ को गलियों में साक्षात् भ्रमण भी करके दिखाया। परमधाम में होने वाली लीला को जागनी रास के द्वारा उसका प्रत्यक्ष अनुभव कराया। चितवनी पर केवल उपदेश ही नही अपितु गुम्मट साहब के ऊपर वाली गुम्मटी में बैठकर लगातार तीन वर्ष तक चितवनी की। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यक्ता।

राजाराम, झांझन भाई, देवकरण, महाराजा छत्रसाल आदि साक्षात सेवा व्रतकी मूर्ति थे। हमें उनके जीवन से सेवा भाव का व्रत लेना चाहिए। औरंगजेब को सच्चे मार्ग पर चलाने के लिए उनके द्वारा धर्म संघर्ष हमारे लिए प्रेरणादायक है। कितने राजा राणा राव आदि को उस से संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। राष्ट्र के प्रति अपनी कर्तव्यनिष्ठा का सबूत दिया।

आज सरकार गांव गांव, नगर नगर में समुदाय केन्द्र खोल रही है। जिसे हम Community centers भी कहते हैं। छत्तीस कारखानों का प्रसंग इसी का रुप है। पांच हजार की जमात

एक ही परिवार के रूप में रहना कितना बड़ा आश्चर्य लगता है क्योंकि आज हमारे संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। एकल परिवार का परिचलन हो रहा है। बेटा बहु अपने माता पिता को साथ रखने को तैयार नहीं। यह भी हमारे लिए सिखापन है। जो आज जिस प्रजातन्त्र का चलन है श्री जी ने इसका चलन चार सौ वर्ष पहले से ही डाल दिया था। जब कभी भी औरंगजेब के साथ धार्मिक युद्ध करने के लिए कोई योजना या मन्त्रणा की जाती थी तो सभी साथियों की राय ली जाती थी। श्री जी अपनी राय कभी भी उन पर नहीं थोपते थे। यदि सर्व सहमति नहीं हो पाती थी तो उस सत्यग्रह को स्थगित कर देते थे। यह थी एक दिली। आज सुन्दरसाथ में परस्पर वह प्रेम नहीं रहा। सहस्तित्व की भावना लुप्त हो गई है।

अब प्रश्न यह उठता है क्या हम बीतक साहब से मिलने वाली सभी शिक्षाओं पर पूर्णतः अमल कर सकते है ?क्यों नहीं केवल एक मात्र तीव्र इच्छा, घुटन जैसी व्याकुलता मान लीजिए हम से कोई अधिक शक्तिशाली सज्जन भले ही हमारा पूज्य हो वह अपने बलसे हमें किसी तालाब के जल में दबा दे, हमारा श्वास घुटने लगेगा, हम बाहर निकलना चाहते हैं। एक क्षण की विलम्ब हमें सहन नहीं होती। एक श्वास के लिए छटपटाते हैं। यह है तीव्र इच्छा का वास्तविक रूप। इस तीव्र इच्छा को स्पष्ट करने के लिए एक और उदाहरण देता हूँ। मान लीजिए कोई व्यक्ति जा रहा है। उसके पास एक आभूषणों का थैला है। रास्ते में प्यास लगने पर एक कुएं पर पानी पिया, कुछ विश्राम किया और थैला वहीं छोड़कर चल दिया। कुछ मील दूर चला गया तो अकस्मात उसे ध्यान आया कि ओहो! थैला तो वहीं कुएं पर ही छोड़ आया हूँ तो आप कल्पना कीजिए एक थैले को पुनः प्राप्त करने की आन्तरिक उत्कट चाह कितनी होगी ? इसी का नाम हैं तीव्र इच्छा, Burning Desire जब तीव्र, इच्छा, पूर्ण समर्पण तथा प्रयत्न का संगम हो जाता है तो श्री राज की कृपा बरसने लगती है और मन इच्छित कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इतनी बरकत है बीतक साहब की वाणी में।

प्रणाम जी

अमर लाल सेठी

अबोहर

कलश हिन्दुस्तानी टीका के अंश

टीका कर्ता - श्री राजन स्वामी

राग श्री सामेरी

पिया मोहे स्वांत न आवहीं, ना कछू नैनों नीर।

पिया बिना पल जो जात है, अहनिस धखे सरीर।।१।।

श्री महामति जी की आत्मा कहती है–मेरे प्राणेश्वर आपका दशीन पाये बिना मुझे कदापि शान्ति नहीं मिल सकती अब तो आपके विरह में तड़पते–तड़पते मेरी आंखों के आसूं भी सूख चुके हैं। मेरे आराध्य! मेरे सर्वस्थ! आपके बिना दिन या रात्रि का कोई भी पल जो बीत रहा है, उसमें मेरा शरीर विरह की अग्नि में जला जा रहा हैं।

सब अंग अगनी जलके, जात उड़े ज्यों गरद।

क्यों इत स्वांत जो आवहीं, जित दुलहे का दरद।।२।।

आपके विरह की अग्नि ने मेरे शरीर के एक–एक अंग को इतना निर्वल और असहारा बना दिया है किजैसे हवा में उड़ती हुई धूल। मेरे जीवन के आधार!आप को पाने की मेरी हृदय में इतनी तीस (पीड़ा) है कि आपको पाये बिना मेरे अन्दर किसी भी प्रकार से शान्ति आ ही नहीं सकती।

हाड़े हाड़ पिसात हैं, चकी बीच जिन भांत।

आराम ना जीवरा होवहीं, तो क्यों कर उपजे स्वांत।।३।।

जिस प्रकार चक्की में अन्न पीसा जाता है, उसी पगार विरह की चक्की ने मेरी अस्थियों को पीस कर चूरा बना दिया है अर्थात अत्याधिक निर्वल बना दिया है। जब मेरे जीव को प्रियतम की सान्ध्यिमा का आनन्द ही नहीं मिल रहा है, तो भला मेरे हृदय में शान्ति कहा से आ सकती है?

सब अंग सारन होए के, सारे सकल संधान।

अपनी इंद्री आप को, उलट लगी है खान।।४।।

विरह की अग्नि ने मेरे एक–एक अंग में ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि वे भा ले छेदने के समान मेरे सभी सन्धि स्थानो (जोड़ों) में पीड़ा दे रहे हैं। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे मेरी सभी इन्द्रियो स्वयं को ही नष्ट करने (खाने) पर तुली हुई हैं।

भावार्थ– कलाई–कोहनी,कंधा घुतना, कमर, एड़ी आदि शरीर क स्मन्धि स्थान हैं। इन स्थानों पर शरीर के अन्य दो अंग जुड़े होते हैं। विरह की पीड़ा से ऐसा प्रतीत होरहा है कि इनके जोड़ अभी टूट जायेगें और सभी अंग अलग–अलग हो जायेंगे। इसे ही भाला चुभोने की पीड़ा के रूप में दर्शाया गया है।

उड़ी जो नींद अंदर की, पड़त न क्यों ही चैन।

प्यारी पिउ के दरस की, कब देखूं

मुख नैन।।५।।

तारतम ज्ञान के प्रकाश ने मेरी अज्ञानता की नींद को समाप्त कर दिया है जिससे मुझे अपने प्रियतम के स्वरूप की पहचान हो गयी है। अब मुझे उनके वियोश में किसी भ प्रकार से चैन (आराम) नहीं मिल रहा है। मेरी एकमात्र यहीं चाहत है कि मैं कब अपने नैनों से उनके सुन्दर मुख कमल का दर्शन करूँ

पिया बिन कछुए न भावहीं, जानूं कब सुनों पिया बैन।
जोलों पिउ मुझे न मिले, तोलों तलफत हों दिन रैन।।६।।

अपने प्राणवल्लभ से अलग रह कर मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। न जाने वह घड़ी कब आयेगी जब मैं अपने जीवन के आथार प्राण प्रियतम की अमृत से भी मीवी वाणी को सुनंगी?जब तक वे मुझे नहीं मिलेंगे, तब तक मुझे नहीं मिलेंगे, तब तक मुझे दिन रात तड़पना ही पड़ेगा।

घाटी टेढ़ी सकड़ी, तीखी खांडा धार।
रोम रोम सांगा सामिया, तामें चढूं कर सिनगार।।७।।

प्रेम के महत्व (घाटी) में पहुँचने का मार्ग क बहुत ही टेढ़ी एवं तंग पगडंडी से होकर जाता है। इस पर चलना तलवार की तीखी धार के समान कष्ट कारी है। मेरे रोम रोम में विरहके भाले छेद कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में मुझे सर्वस्व समर्पण का श्रृंगार करके ही चलना है।

भावार्थ– कर्मकाण्ड का मार्ग बहिर्मुखी होता है। इसमें शरीर की बहि र्मुखी ही भाब लेती हैं इसलिये यह सीधा और चौड़ा है। इसके विपरीत प्रेम का मार्ग आव्या की गहराइयों में होता हैं। इसके लिये सारे संसार से अपनी दृष्टि हटाकर एकमात्र प्रियतम में ही के न्द्रित करना होता है जो बहुत ही कठिन कार्य है। यही कारण है कि प्रेम के मार्ग को संकरा और टेढा कहा गया है अर्थात् अन्तर्मुखी होकर मात्र एक(परब्रह्म) को चाहना।

नीर खारे भवसागर, और लेहेरां मारे मार।
बेटो बीच पछाड़हीं, वार न काहूं पार।।८।।

इस भवसागर का जल बहुत ही खारा है अर्थात आत्मिक आनन्छ के लिये इस में कुछ भी नहीं है। इसकी मोह रूपी लहरों की चोट से जीव भिन्न–भिन्न योनियों के शरीर रूपी टापुओं मैं भटकता रहता हैं। इस भवसागर का कहीं भी ओर छोर नहीं है। यह अनन्त विस्तार वाला है।

तान तीखे आड़े उलटे, और लेत भमरियां जल।
मिने मछ लडाइयां, यामें लेवें सारे निगल।।९।।

इस भवसागर की लहरों की गर्जना बहुत ही तीखी है। उब्टी दिशा से लहरों के सीधे प्रहार से जीव जन्म–मरण रूप भंवर मं इस प्रकार फंस जाता है कि उससे निकल पाना कठिन हो जाता है। इस की अथाह जलराशि में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि बड़े–बड़े मगर मच्छ होते हैं जो जीव से लड़कर उसे निगल जाते हैं।

ए दुनी दिल अंधी दिवानी, और बंधी संधों संध।

हाथों हाथ न सूझहीं, तिमर तो या सनंध।।१०।।

सांसारिक प्राणियों के हृदय में माया का अन्धकार फैला होता है, और वह मायावी सुखों के लिये पागल रहती है। माया के जीव चारों ओर (शारीरिक, मानसिक, व्यवहारिक आदि) से माया से बंधे होते हैं। इस संसार में माया का इतना अधिक अन्धकार फैला हुआ है कि हाथ नहीं दिखयी देरहा है अर्थात बहुत पास की भी वस्तु नहीं दिखायी देती।

भावार्थ– 'हाथ को हाथ न सूझना' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है– बहुत पास की भी वस्तु का न दिखयी देग। इसका आशय यह है कि हम इस संसार में अपने निकटहम सम्बन्धियों के भी विषय में यह नहीं जानते कि पूर्व जन्म में हमारे साथ इसका क्या सम्बन्ध था हम भी अपने ही भविष्य या पूर्व के जन्मों के विषय में नहीं जानते। प्रत्येक प्राणी अपने शरीर अन्तःकरण, आहार–एवं बिहार के लिये माया पर आश्रित होता है। इसे ही प्रत्येक अंग की संधि का माया से जुड़ना कहा जाता है।

धखत दाह दसो दिस, झालां इंड न समाए।
फोड़ आकास पर फिरे, किन जाए ना उलंघी ताए।।११।।

दसों दिशाओं में तृष्णा की अग्नि जल रही है, जिसकी लपटें इतनी अधिक हैं कि वे इस ब्रह्माण्ड में भी नहीं समापा रहीं हैं। मेरी आत्मा! इस तृष्णा की अग्नि से बचने के लिये तू उस निराकार मण्डल जिसे आज दिन तक कोई भी पार नहीं कर सकता है। को पार कर अपने प्राणप्रियतम से मिलन करले

घाट पाट अति सलवली, तहां हाथ न टिके पपील पाए।
पवने अगनी पर जले, किन चढ़्यो न उड़्यो जाए।।१२।।

भवसागर के किनारे की धरती पर संशय की ऐसी काई उग गयी है कि उस पर चीटी रूपी चिन्त तृत्ति का भी चल पाना सम्भव नहीं होता। आलस्य एवं प्रमाद रूपी हवा के झोंको से तृष्णा रूपी अग्नि और अधिक प्रज्जवलित हो जाती है जिससे आत्मा के अट्ट विश्वास एवं प्रेम रूपी पंख जल जाते है सका पिरणाम यह होता है कि किसी भी प्रकार से न तो चलकर भवसागर को पार किया जा सकता है और न उड़कर।

इत चल तूं हस्ती होए के, पेहेन पाखर गज घंट बजाए।
पैठ सकोड़ सुई नाके मिने, जिन कहूं अंग अटकाए।।१३।।

मेरी आत्मा! अब तू धैर्य का लौह वस्त धारण कर तथा सहनशीलता के घण्टे बजाते हुए हाथी के समान चल दे। सुई के छोटे से हिद्र में डाले जाने वाले धागे की भांति तू अपनी चितवृ त्तियों को सारे संसार से इस प्रकार समेत ले कि किसी भी वस्तु में तेरा नाम मात्र भी आकर्षण न रहे। अपनी सम्पूर्ण चित्तवृति को एक मात्र मूल मिलावे में विराजमान यूगल स्वरूप के प्रति के केन्द्रित करते।

दीजे न आल आकार को, पिउ मिलना अंग इन।
दौड़ चढ़ पहाड़ झांप खा, कायर होवे जिन।।१४।।

तू अपने शरीर में किसी भी प्रकार से आलस्य

का प्रवेश न होने दे क्योंकि तुझे अपने प्राणेश्वर इन्हीं संसाधनों (शरीर के अन्तः कारण आदि) से प्राप्त करना है। तू कायर बनने की राह पर न चल, अपितु दौड़ते हुए तू आत्म समर्पण रूपी पर्वत के शिषर पर पहुँच जा और प्रेम की छलांग लगा दे। ऐसी अवस्थामें तेरे आराध्य तुझे क्यों नहीं मिलेंगे?

बोहोत फंद बंध धंध कई, कई कोटान लाखों लाख।
अंदर नजरों आवही, पर मुख न देवे भाख।।१५।।

प्रियतम से मिलन की रह में लाखों–करोड़ो बन्धन और उलझानें है, जिन्हें मात्र आत्मिक दृष्टि से ही देखा जा सकता है। उनके विषय में इस मुख से कुछ भी कह पान। सम्भव नहीं हैं।

आड़े चौदे तबक मोह, निराकार निरंजन।
याके पार पोहोंचना, इन पार पिउ वतन।।१६।।

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर मोहतत्व (निराकार–निरञ्जन) का विस्तार है। तुझे इसके परे जाना है। निराकार–बेहद के पार आकर ही तू अपने प्रियतम के लीला धाम में प्रवेश कर सकती हैं।

भावार्थ– पंच भूतात्मक चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड जैसे असंख्यों ब्रह्माण्ड (लोक) मन, बुद्धि एवं अहंकार के आवरण में भ्रमण करते रहते हैं। इन सबके परे मोह तत्व का आवरण है। निराकार से तात्पर्य है–आरि से रहित। इसी प्रकार अवयव रहित पदार्थ को निरञ्जन कहते हें। इस आधार पर आकाश अहंकार, महत्तत्व तथा मोहत्तत्व सभी को निराकार–निरञ्जन ही कहा जाता है। अपरोक्त चौपाई में व्यष्टि (व्यक्तिगत) रूप से केवल एक ब्रह्माण्ड को लक्ष्य करके वर्णित किया गया है। वस्तुतः इन सभी समष्टि (सामूहिक) स्थूल ब्रह्माण्डों के चारों ओंर सूक्ष्म रूप से अहंका, महत्तत्व तथा उसके पश्चात् मोह तत्व का आवरण हैं।

पांउ चले ना पर उड़े, बीच तो ऐसे पंथ।
पर ए सब तोलों देखिए, जोलों ना दृष्टें कथ।।१७।।

निराकार से परे परमधाम की राह इतनी दुर्गम है कि उस पर प्रियतम की कृपाके बिन न तो ज्ञान एव उपासना के पैरों से चला जा सकता है और न अटूट विश्वास और प्रेम के पंखो से उड़ा ही जा सकता है। किन्तु ये बाधायें तभी तक दिखायी देती हैं जब तक प्रियतम से मिलन नहीं होता है।

आतम बंधी आस पिया, मन तन लगे वचन।
कहे महामती कौन आवहीं, इत हुकम खसम के बिन।।१८।।

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि मेरे प्राणवल्लभ! मैं अपने तन,मन एवं वचन से एकमात्र आप से ही बंधी हूँ। यह तो निश्चित है, कि जब तक आपकी इच्छा नहीं होगी (हुक्म नहीं होगा) तब तक कोई भी माया को पार कर आपके चरणों में नहीं आ सकता हैं।

।।प्रकरण।।४।।चौपाई।।११८।।

प्रणाम जी

अस्तेय

मनुस्मृति के अनुसार धर्म का चौथा लक्षण अस्तेय है (चोरी का अभाव) सेवा में सच्चिदानन्द पारब्रह्म परमात्मा की राह पर गमन करने वाले सुन्दरसाथ जी व धर्मानुरागी सज्जन वृन्दः– मानव धर्म का चौथा लक्षण है– अस्तेय अर्थात चोरी न करना। दूसरे की वस्त् बिना पुछे (हक) को ग्रहण करना चोरी कहलाती है। चोरी के कई तरीके होते हैं, किसी वस्तु को उठा लेना, वाणी से छिपाना, बोलकर चोरी करना, करवाना, मन से परायी वस्तु को तांकना आदि सब चोरी के रूप हैं। स्थुल चोरी का रूप तो किसी की चीज बिना पूछे बिना जानकारी ले लेना ही है। ऐसे चोरों के लिए दण्ड का विधान भी है। परन्तु सभ्यता की आड़ में, कानून से बच कर आज कल कितनी अधिक चोरीयां हो रही है। जितने अधिक कानून बनते हैं, उतने ही अधिक चोरी को नयी–नयी क्रियाजों का आविष्कार हो रहा है। भारतीय संस्कृति में तो मन के दूषित विचारों को भी चोरी को श्रेणी मे रखा गया है, मन, वचन,कर्म से किये गये दुष्कृत्य महा कुकर्म व्यभिचार भ्रष्टाचार महा पापों की बडी श्रेणी में आते हैं।

आज की सभ्यता के युग में चोरियों की भरमार है समाज की प्रगति के नाम पर न जाने कितने बड़े पैमाने पर चोरियों हो रही हैं। आज मजदूर से लेकर अधिकारीयों तक उपर की कमाई में लगा है। सभ्यता की थालों में परोसी काले धन की कमाई प्रगति के रूमाल से ढक कर परोसी जा रही है। अंग्रजों के शासन काल में चोरियां घटी यदि (परन्तु स्वतन) भारत में बहुत ऊँचे स्तर पर प्रगति कर रही है। प्राचीन काल में चोंरों डकैतो का भिन्न समुदाय होता था जो घृणा की दृष्टि से देखा जाता था परन्तु अब तो यह बिमारी संक्रामक हो गयी है। अगर इस रोग की कोई अचूक ओबधि नहीं मिली तो यह समाज को समूल नष्ट कर देगी छोटे चोरों को तो पुलिस भी पकड़ति है परन्तु बड़े बड़े डकैतों , भ्रष्टाचारियों, घूंस खोरों, जमा खोंरों, रिश्वत खोरों, काम चोरों को तो देखकर पुलिस क्या शासन भी धबराता है। जब ऐसे लोगों को दण्डित नहीं किया जाता है तो इनकी संख्या बढती चली जाती है। छोटी–मोटी चोरी की पोल खुल जाती है परन्तु बडी वारदात तो खुल ही नहीं पाती

वहाँ पर तो सफेदपोशों का हाथ भी हो सकता है। किसी भी पर्तो की सरकार बनती है तो कहते है हम भ्रष्टाचार, गरीबी, पेशेवरचोरों को खत्म करेंग परन्तु ढाक के तीन पात नहीं रहते है चौथा लगे नहीं ना पाँचवे की आस

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नो पस्थानम् ।
यो,द, 2/38

यदि मनुष्य चोरी के कर्मों का परित्याग करदे तो सभी रत्नों की प्राप्ति उसको स्वतः ही हो जायेगी। अपने आप स्तेय (चोरी) वाले स्वभाव को छोड़कर धर्म प्रिय बन जायें तो गरीबी, भ्रष्टाचार, जमाखोरी सब समूल नष्ट हो जायेगी। जीस समाज में कलुषित मन वाले लोग रहते हैं। वह समाज पतन की गहरी खाई मे गिर पड़ता है। ब्रह्मज्ञान तथा प्रेम लक्षणा भक्ति के संस्कारों से ही समाज, देश, संस्था को बचाया जा सकता है।

वचने कामस धोई काढिये, राखिये नहीं रज मात्र ।
जोगवाबाई सर्वे जीतिये,त्यारे थैंए प्रेमना पात्र ।। कि 0 68/8

साथियों जाग्रत जिज्ञासु मानव धर्म रहित हो ही नहीं सकता क्यों कि धर्मों रक्षति रक्षितः, इसलिए कभी भी चोरी की भावन को नहीं पलने देना चाहिए। जब हम धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म हमारी रक्षा छतरी की भांति करेगा यदि कोई धर्म का विनाश करने का दुस्साहस करेगा तो धर्म ही उसका नाश कर देगा।

यहाँ पर मैं कुछ चोरी के जो फार्मुले समाज ने अपनोय हैं आपकी दृष्टि मे उपस्थित कर रही हूँ–जो चोरी की कोटि से आते हैं।

झुठा रोब जमा कर लोगो को धोखा देना, व्यपारि कोई लोग अच्छा माल बताकर घटिया बेचते हैं। माल की जमाखोरी करना, महंगाई में निकालना, करीबों का माल हड़पना, धोखा देकर मूर्ख बनाना, सरकारी चिजों का मुफ्त में प्रयोग करना, मरीजों और विद्यार्थी यों की इस्तेमाल सामग्री को स्वयं प्रयोग करना, बेकार पड़ी चीजों को दान मे देना–प्रिय पाठकों ये सब तो समाज विभाग व्यापार आदि की सभ्य चोरियां हैं। परन्तु हमारे आश्रमो में भठों, मन्दिरों, सत्संगडेरों में भी ये सभ्य चोरियां होती रहती हैं। और डकैतियां भी। हमारा भारत कभी विश्व गुरू हुआ करता था जहाँ चोरी तो दूर, द्वार में ताला भी नहीं डाला जाता था– प्यारें साथियों जहाँ पर चाणक्य जैसे धर्म

गुरू अमात्य होते थे जो राज्य के धन को छुना भी चोरी समझते थे, परायी स्त्री को मां, पाराये धन को मिट्ठी मानते थे। ये भी चोरी है– अनेक धर्मोपदेशक और समाज सुधारक शास्त्रों के यथार्थ अर्थ को छिपाकर मत प्रचार या स्वार्थ सिद्धि के लिए विपरीत अर्थ करते हैं ये भी चोरी है। कला और सहित्य की भी सांत्यार में चोरी होती है। आज आधुनिक युग में न कोई विभाग बचा, ना व्यापार और न धर्म, न कर्म सभी जगह चोरी की बू आ रही है। यह कोई अति श्योक्ति नही है। परन्तु कुछ जन हैं बचे हुऐ, जिनके महान प्रताप से यह धरती माँ, मातृ भुमि बची हुयी है।

प्यारे साथ जी परम धाम की ब्रह्मसृष्टि भी इस माया का खेल देखने के लिए आयी है। उसके लिए तो यह संसार गोविन्द भेड़ा भूत मण्डल है जिसमें चारों और आकर्षक बाजार सजा है जो हर प्रकार से आप को प्रलोमन दे रहे हैं परन्तु हमें आकर्षित नही होना है। क्योंकि गोविन्द भेड़े की तरह हमें भी माया अपने खूनी पंजो मे लेकर हमारा ईमान धर्म सब कुछ लूट लेगी। इस लिए भूल कर भी चोरी कर्म(स्तेय) जैसे महा पाप की तरफ नजर भी नहीं करनी है।

तुम आइयां छल देखने, मिल गैयां माहेछल।
छल को छल न लगही ,ओ लहरी वो जल।। सनंध 12/11

आगुं ऐसे कहे आशिक – माया के जीवों में भी एक से बड़ कर एक महापुरूष हुये हैं। जिन धर्म के दसों लक्षण लक्षित होते थे तो सुन्दर साथ से तो शतांश पूर्णरूप से पालन करने की अपेक्षा की जाती है। श्री राम रतन महाराज जी कहते थे कि भाई आश्रम की वस्तु, पैसों या धन को, या समाज के धन को जो चोरी से काम मेपगा वह सबसे बडा पात होगा। आश्रम के (धन सम्पत्ति) को पचाने के लिए लोहे के दाँत होने चाहिए। नहीं तो आँत फाडकर बाहर निकल जायेंगे। बाजार में बैठकर लम्बी–चोडी बातें करना नाम के लिए विपुल धन राशी में से थोडा सा धन दान करना ही धर्मका लक्षण नही है। साम, दाम, दण्ड, भेद, द्वारा करोड़ों अरबों की धन राशि संचित करके धर्म खाते के नाम पर कुछ ही धन दे देने से पाप कर्म सिर से नहीं उतरते हैं किसी ने कहा है–

ऐरण की चोरी करै, करै सूई को दान।
चढ़ चौबारे देखण लागी, कद आसी सुखपाल।।

मारवाड़ी कबि निजानन्द धरणा करने पर हमारे अन्दर दिखावे की खर्ची भावना नहीं होनी चाहिए सुन्दर साथ जी में लेन देन प्रथा, और विलासिता गर्क मैं डालने के साधन हैं हमें अपने (आइडिल) पुरखों विद्वानो से शिक्षा लेनी चाहिए। कितनी विपत्तियां आयी परन्तु सत्याचरण को नहीं छोड़ा

तुम मेरे साथ जी, जिन रहो बिखे रस लाग।

पाँव पकड़ कहे इन्द्रावती, उठ खड़े रहो जाग ।। प्र0 हि 0 17/21

योग दर्शन का कथन है कि– मनसा वाचा कर्मणा निस्प्रदा, अस्तेयमिति सम्प्रोक्तं ऋषिभि स्तत्व दार्शभि। अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नों प्रस्थानम्। यो0द0 2/39

सम्पूर्ण मानव समाज को गरीबी से उबारने का मार्ग धर्म के शाश्वत सत्य, सिद्धन्तों का पालन करने में है। यदि मनुष्य मन, वाणी कर्म से (अस्तेय) चोरी ने करने में प्रतिष्ठित हो जाये तो उसे सभी रत्नों की प्राप्ति स्वतः ही हो जायेगी।

हमारे निजानन्द सम्प्रदाय में प्रवेश के समय पाँच बातों का संकल्प कराया जाता है कि– तम्बाकू पीना, खाना,माँस, मदिरा, पर पुरूषव स्त्री गर्मन और चोरी करना जैसे पापो को पहले छोड़ना पड़ता है तब परमात्मा के चरणो में आया जाता है–

पीना तम्बाकु छोड़ दो, और मांस मछली सब।

शराब और सब कैफ, परदार चोरी न कब।। बी0 सा0 27/29

बीतक साहिब में प्रसग आता है कि मैरों सेठ को ब्रह्मज्ञान हृदय में धारणा करने केक लिए यह प्रतिज्ञा करायी थी। श्री जी साहेब जी हम सब सुन्दर साथ जी के लिए आज भी प्रेरणा स्रोत के रूप हैं। कि हमें कभी चोरी नही करनी चाहिए प्यारे साथ जी जागनी के योद्धाओं, प्रचार के प्रेम पुजारियों, समाज के उत्थान कारों समाज सुधारकों विभागों में कार्य रत साथियों, व्यापार करने में धुरन्धर साथियों सभी से प्रार्थना है कि अपने जीवन काल मे अस्तेय को अपनावें और समाज, संस्था परिवार और देश को विश्व गुरू बनायें केवल – केवल अस्तेय को अपनाकर–

आपकी चरण रज
राजबाला बेहट
9528903601

सच्चा प्रेमी प्रतिदान नहीं चाहता

सच्चे प्रेम से प्रेमी अथवा उसके प्रेम–पात्र को कभी कष्ट नहीं पहुंच सकता। उदाहारणार्थ, मान लो, एक पुरूष किसी स्त्री से प्रेम करता है। वह चाहता है कि वह स्त्री केवल उसी के पास रहे,अन्य पुरूषों के प्रति उस स्त्री के प्रत्येक व्यवहार से उसे ईष्या होती है। वह चाहता है कि वह स्त्री का गुलाम हो गया है और चाहता है कि वह स्त्री भी उसी की गुलाम होकर रहे।

यह तो प्रेम नहीं। यह तो गुलामी का एक प्रकार का विकृत भाव है, जो ऊपर से प्रेम जैसा दिखाई देता है। यह प्रेम नही हो सकता, क्योंकि यह क्लेशदायक है, यदि वह स्त्री उस मनुष्य की इच्छानुसार न चले, तो उससे उस मनुष्य को कष्ट होता है। वास्तव में सच्चे प्रेम की प्रतिक्रिया दुखप्रद तो होती नहीं। उससे तो केवल आनंद ही होता है। और यदि उसमें ऐसा न होता हो, तो समझ लेना चाहिए कि वह प्रेम नहीं है, बल्कि कोई और चीज है।

जब तुम अपने पति, अपनी स्त्री, अपने बच्चों, यहां तक कि समस्त विश्व को इस प्रकार प्रेम करने में सफल हो सको कि उससे किसी भी दुःख, ईर्ष्या अथवा स्वार्थतारूप कोई प्रतिक्रिया न हो, तभी तुम सम्यक् रूप से अनासक्त होने की अवस्था में पहुंच सकोगे। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं,..... हे अर्जुन, यदि मैं कर्म करने से एक क्षण के लिए भी रूक जाऊं, तो सारा विश्व ही नष्ट हो जाए। मुझे कर्म से किसी भी प्रकार का लाभ नहीं, फिर भी मैं कर्म क्यों करता हूं?–इसलिए कि मुझे संसार से प्रेम है।... ईश्वर अनासक्त है। क्यों?– इसलिए कि वह सच्चा प्रेमी है।

लेखक
विद्यार्थी कनेश्वर

प्रीतम-प्रियतम

चितवन

चितवन में सबसे पहले पन्ना जी गुम्मट जी का ध्यान लगाओ क्योंकि वहां साक्षात् श्री प्राणनाथ जी जागृत रूहों के साथ विराजमान है। अर्स तुमारा मेरा दिल है और इस दिल में ही हमारे प्रीतम श्री राज जी विराजमान है। दिल में ही राज जी को पाना है, जगह चाहे कहीं भी हो बस एकान्त में चितवन में बैठ जाओ और मूल मिलावे का ध्यान लगाओ। वाणी के अनुसार श्रृंगार ग्रन्थ में युगल स्वरू श्री राज श्यामा जी की शोभा–श्रृंगार दिल में बसाने पर जोर दिया है। जब तक हम चितवन में युगल स्वरूप को नहीं बसोयेंगे तब तक हमारी आत्मा जागृत नहीं हो सकती। चाहे हम शेरपुर वाले महाराजजी के दिवाने है, चाहे सरकार श्री जी के, चाहे बाबा दयाराम जी और चाहे मंगल दास महाराज जी के।

चितवन और चिन्तन में अन्तर होता है। चितवन में हमें एकान्त में स्थित हो कर बैठना पड़ता है और एकान्त चित्त से मूल मिलावे में युगल स्वरूप श्री राज जी की शोभा श्रृंगार को निहारना होता है। परम धाम के 25 पक्षों को दिल में बसाना है।

सुरता एकै राखिए, मूल मिलावे माहें।

24 घंटो में चाहे हम एक घंटा चितवन करें चाहें 4 घंटे। बिना हिले–डुले स्थित होकर ही बैठना पड़ेगा। चिन्तन में हम चलते–फिरते,खाते,पीते, सोते अपने प्रीतम की याद में रहते हैं। हम कोई भी कार्य कर रहे हैं पर हमारा ध्यान अपने धाम धनी में ही है। जैसे बृज में हम सारे कार्य करते थे, और ध्यान हमारा श्री कृष्ण की प्यारी छबि मे ही होता था।

खाते, पीते, उठते–बैठते, सोवत सुपन जागृत ।

दम न छोड़े मासूक को, जाको होए हक निसबत ।।

कुलजम स्वरूप की वाणी के अनुसार ही हमे चितवन करनी है। मूल मिलावे के मध्य में कंचन रंग के सिंघासन पर युगल स्वरूप श्री राज श्यामा जी विराजे हैं। नूर ही नूरझी। श्री राज जी सफेद जामा, केसरी रंग की इजार, हरा पटुका, आसमानी रंग की पिछौरी और सिर पर लाल रंग की पाग पहने सौन्छर्य से भरपूर अति सुन्दर हैं कि शब्दों में उस अक्षरातीत की शोभा का बयान करना असम्भव है। श्री राज जी के बायें तरफ श्यामा जी, सिन्दुरिया रंग की साडी नीली लाही को चरणिया, श्याम रंग जड़ाव की कंचुकी पहने एक महारानी की भाँति प्रतीत होती हैं। श्री राज जी का बायां चरण कमल नूर की चौकी पर और दायां चरण कमन बायें जांध पर रखा हुआ है। श्री श्यमा जी के दोनों चरण कमल नूर की चौकी पर रखे हुए हैं। चरण अति कोमल, लालिमां से भरपूर। नाखून हीरे के समान चमक रहे हैं। श्री राज जी के चरणों मे झांझरी, घूंघरी, कांबी और कडला के आभुषण। श्यामा जी के अंगूठे में अनवट और अंगुलियो में बिछुए। चरणों में ही ध्यान लगाने से पूरा स्वरूप नजर आता है।

चारों जोड़े चरण के, ए जो अर्स भूखन ।

ए लिए हिरदे मिने, आवत स्वरूप पूरन।।

ए मेहेर करे चरण जिन ऊपर, देत हिरदे पूरन स्वरूप।

युगल स्वरूप चित्त चुभत, सुख सुन्दर रूप अनूप।।

फेर–फेर चरण को निरखिए, रूह को ए ही लागी रटो।

हक कदम हिरदे आए, तब खुल गए अन्तर पट।।

श्री राज जी का मुखारबिन्द अति सुन्दर अमरद (किशोर) सूरत, कंधे तक घूंघराले बाल, सिर पर पाग, पाग में दुगदुगी, कलंगी की शोभा। माथे पर सोहामणा तिलक, आँखे नूर भरी गोरे–गोरे गाल, नाक में बेसर, कानों में बाला–कुन्डल। श्री श्यामा जी अति सुन्दर, माथे पर बिन्दी, माथे पर टिका, मांग की दोनो तरफ मोतियों की लरे मांग पर पानडी की बनावट का आभूषण, सिर पर राखडी की शोभ, राखडी पर साडी का पल्ला।

जो हिरदे आए हक भूखन, जाहेर श्यामा जी के जान।
कलंगी दुगदुगी राखडी, होत दोऊ परवान।।

श्रृंगार में चौथे प्रकरण में लिखा है कि यदि श्री राज जी के आभूषण की शोभा आत्मा के धाम हृदय में आ जाती है तो यह मान लेना चाहिए कि साथ में श्यामा जी की भी शोभा अवश्य आ गयी है। यदि श्री राज जी की कलंगी और दुगदुगी दिखायी देती है तो श्यमा जी की भी राखडी अवश्य दिखायी पड़ेगी। दोनों स्वरूपों की शोभा साथ–साथ ही प्रकट होती है।

यह स्थिति केवल ब्रह्म सृष्टियों के ही साथ होगी अर्थात, युगल स्वरूप का साक्षात्कार मात्र उन्हें ही होगा। जीव सृष्टि या ईश्वरी सृष्टि यदि ब्रह्मसृष्टियों का तरह ही प्रेम में डूब जाती हैं तो भी उसें केवल श्री राज जी को ही स्वरूप दिखायी देगा।

अन्तर पट खोल देखिए, दोऊ आवत एक नजर।
मुखाराबेन्द का, सुख देत हक सूरत।
युगल स्वरूप सोभा लिए, दोऊ बैठि एक तखत।।

श्री राज जी का स्वरूप जहाँ भी होगा, श्यामा जी वहाँ अवश्य। श्री राज जी अपनी अंगनाओ तथा श्यामा जी के स्वरूप का दर्शन किसी को भी नहीं कराते हैं। उनकी जगह वे स्वयं ही दर्शन दे देते हैं और अपनी प्यारी अंगनाओ को छिपा कर रखते है।

ए जो स्वरूप निसबत के, काहू न देवे देखाए।
पहले आप देखावत, प्यारी निसबत रखे छिपाए।।

बाकी का श्रृंगार बताना नहीं। क्यों?। क्यों कि आप सब जानकार हो। वैसे भी सात्मा जब एक अंग को देखने लगती है तो उसी में ही डूब जाती है। हट कर अन्य किसी अंग में नहीं जा पाती।

और अंग लग जाए ना सके, अंग एकै लग जाए रंग।

एक ही क्षण में श्री राज श्यामा जी का श्रृंगार बदल जाता है। पल भर में ही नये

नये प्रकार के अनेकों श्रृंगारा दिखने लगते हैं।

खिन में सिनगार बदले, करें नए नए रूप अनेक।

होत उतारे पेहेने बिना, ए क्यों कहयो जाए विवेक।।

आत्माओं की जैसी इच्छा होती है, उन्हें उसी प्रकार के नये–नये श्रृंगार में धनी का स्वरूप दृष्टि गोचर होने लगता है।

और भी हक सरूप की, इन विध है बरनन।

रूह देखे नए नए सिनगार, जिन जैसी चितवन।।

अगर आत्मा श्री राज जी के सिर पर मुकुट देखना चाहती है तो मुकुट नजर आयेगा और अगर पाग बंधी देखना चाहती है तो पाग नजर आयेगी। पाग कही सिर हक के, और कहया सिर मुकुट।

अगर आपकी कमर मे दर्द है आप ज्यादा देर स्थित नहीं बैठ सकते तो आप कुर्सी, सोफे, पलंग पर बैठ कर भी चितवनी कर सकते हो।

चितवनी का मजा आनन्द अपना ही है। एक बार जब कोई चितवनी करना शुरू कर देता है तो वह उसके बिना नहीं रह सकता। बैचेन हो जायेगा। चैन उसे तभी आयेगा जब एकान्त में जाकर बैठ जायेगा। ध्यान में हम अपने पिया युगल स्वरूप राज श्यामा जी को पाना नहीं चाहते। हमें क्या चाहिए नाम शोभा और प्रतिष्ठा। हमारा मार्ग प्रेम का है। हमने झुकना सीखा ही नहीं। हम सब एक है। यहां खेल मे आकर जुदा जदा हो गए हैं। हमारी बाते हमारे विचार जुदा जुदा हो गये हैं। आओ हम सब मिलकर चितवनी करें और अपने अपने धाम में पुनः अपने नूरी तनों में जागृत होए।

इतही बैठं घर जागे धाम, पूरन मनोरथ हुए सब काम।

धनी महामत हँस ताली दे ,साथ उठा हंसता सुख ले।।

प्रणाम जी

बबली

सरसावा

आत्मबोध

सदियों से जीवन के चक्रव्यूह में मानव अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करता रहा है कि कब अपने लक्ष्य का भेदन करें । अपनी शक्ति को जाने बगैर वह अनेक प्रयोग करता है। यदि कोई जान भी लेता है तो वह ठीक से प्रयोग नहीं कर पाता। वह अपनी शक्ति को अनावश्यक कार्यों में क्षीण कर देता है। अपनी शक्ति का सदुपयोग नहीं कर पाने के कारण आज के मानव के समक्ष अनेक प्रश्न खड़े हो गए हैं। जब आदमी पैदा हुआ तब वह ठीक था। तब तक मन की दौड़ प्रारम्भ नहीं हुई थी। विवेक को अपने स्वरूप का आभास नहीं हुआ था। आज की तरह उसके पास समस्याओं कां अंबार नहीं था और न ही जीवन की दौड़ लंबी थी। वह जहां कहीं था, प्रसन्न था। आनंदित था। ज्यों ही व्यक्ति ने विकास के मार्ग पर कदम बढ़ाया, उसके मन में अनेक विचार आने लगे। तभी वह संसार को सब कुछ समझकर उसे अपने में समेटने का प्रयास करने लगा। उसका अपना ही भविष्य प्रश्न बनकर खड़ा होने लगा। समस्याएं पनपने लगीं। धीरे–धीरे परिवार की समस्या, समाज और राष्ट्र की समस्या और उनके प्रति उसके कर्तव्य बोध का भाव जागृत हुआ। अब वह धीरे–धीरे अपने आपको चारों तरफ से घिरा पाने लगा।

मनुष्य की निर्मल विचारधारा अब संधर्ष में बदलने लगी।समाधान के जितने प्रयास किए गए, उतना ही उलझता गया। भागने का प्रयास किया, तो जीवन अनेक प्रश्न लेकर खड़ा हो गया जीवन में दो प्रवृतियां सामने आईं– सांसारिक और अध्यात्मिक। दोनो में मन पर जो प्रवृति ताकतवर बनकर छाईं, व्यक्ति उधर ही झुक गया। आध्यात्मिक शांति के लिए मानव अपना साम्राज्य फैलाने में पूर्णतया कामयाब नहीं हो सका। उसने अतीत और वर्तमान में भौतिक विकास की चकाचौंध को महत्व दिया। भविष्य का गर्भ तो व्यक्ति के विकास में प्रश्न बनकर आज भी ज्यों का त्यों खड़ा है। कारण आत्मबोध से भागने की मनुष्य की प्रवृति। फलस्वरूप काम, क्रोध, लोभ, ईष्या, द्वेष, मद आदि नकारात्मक प्रवृतियां आज मनुष्य की आध्यात्मिक विरासत को लूट रही हैं, लेकिन यह स्थिति अब ज्यादा दिनों तक चलने वाली नहीं है। ऐसा इसलिए क्योंकि भौतिकतावाद की पराकाष्ठा पर पहुंचकर मनुष्य का भौतिकतावाद से मोहभंग हो जाता है।

प्रणाम जी

तारतम का भी तारतम

तारतम का भी तारतम कही जाने वाली खिलवत परिक्रमा, सागर तथा श्रंगार के उपसंहार के रूप में परम धाम की आत्माओ को प्रेम,विरह, निसबत और वाहेदत की पहचान करवाने वाले सिन्धिग्रन्थ में श्री महामती जी के मुखारविन्द से उनके धाम हृदय में बैठकर धनी ने इस चौपाई के द्वारा सभी सुन्दरसाथ को सोचने पर विवश कर दिया है–

ताला द्वार न कूंजी खोलना, समझाए दर्ज सबो आप।

दिल अपने में हक बसे, ज्यो जानो त्यों करो मिलाप।।

श्री महामति जी कहते है कि तारतम वाणी द्वारा राज जी ने सब को अच्छी तरह से समझा दिया है, न कोई दरवाजा हैं न ताला है कुंजी के बारे में कुछ सोचने की जरूरत नही है कूंजी तारतम वाणी के प्रकाश में सभी गुझ भेद राज जी महाराज ने खोल दिए हैं। सभी तरह के संशयों को मिटा दिया है। जैसे चाहो उसी प्रकार से उनसे मिलाव करो।

हक नजीक सेहरग से, आडा पट न द्वार।

खोली आँखे समझ की, देखती न देखे भरतार।।

हमे श्री राज जी महाराज हमारे पिया हमारी श्वास की नली से भी अधिक नजदीक है न कोई परदा है; न कोई दरवाजा; तारतम वाणी के ज्ञान से हमारे विवेक चक्षु खोल दिए है अब प्रश्न यह उठता है कि फिर हमारे प्रियतम प्राणवल्लभ श्री राज जी, हमारे धनी दिखाई क्यों नही देते ?

प्राणधार सुन्दर साथ जी अब इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है। इस बात को एक उदाहरण द्वारा समझते हैः–

एक वृद्धा'औरत घर के बाहर कुछ ढूढ रही थी। वहाँ से गुजरते हुए, एक युवा ने पूछा–माँ! क्या ढूढ रही हो। क्या मैं तुम्हारी कुछ मदद करू ? वृद्धा बोली–बेटा सुई ढूढ रही हूँ। युवक वे पूछा –माँ, सुई कहाँ गिरी तो बूढी माँ ने उत्तर दिया। बेटा, सुई गिरी तो कमरे में

है; पर वहाँ बहुत अंधेरा है; कुछ दिखता ही नहीं। इसलिए सूर्य की रोशनी में बाहर उजाले में ढूंढ, रही हूँ यवक बोला–माँ, सुई तो जहाँ गिरी है; वही मिलेगी। कमरे मे अन्धेरा है तो वहाँ किसी भी प्रकार से प्रकाश करो; सुई मिल जाएगी।

कबीर दास जी ने भी कहा है––

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूढे वन माहि।

ऐसे घट–घट राम है, दुनिया देखे नाही।।

कस्तूरी एक सुगन्धित पदार्थ है जो हिरन की नाभि में रहता है। हिरन को पता ही नही। वह उस सुगन्ध को सारे वन में ढूढता फिर रहा है। ऐसे ही परमात्मा सबके अन्दर है पर दुनिया उसे देख ही नहीं पाती। और भी कबीर दास जी ने कहा है मीन पानी वीच प्यासी, मोहे सुनि–सुनि आवत हाँसी।

मछली पानी के अन्दर निवास करती है; फिर भी प्यासी है। यह बात सुनकर बहुत इंसी आती है वैसी ही हास्पास्पद स्थिति हमारी है धनी हमारे दिल मे बैठे है और हमें दिखते ही नहीं।

तारतम वाणी से यह तो इलम हो गया कि धनी हमारे दिल में है लेकिन खाली इलम से क्या होता है जब तक उन्हें पाने के लिए दिल में इश्क ही नही आता किरतंन ग्रन्थ में श्री महामति जी ने कहा भी है–

इलम चातुरी खूबी अंग की, मोहे एही पट लिख्या अंकूर।

एही ना देवे देखने, मेरे दुल्हे के मुख का नूर।।

खाली इलम ही धनी पाने में परदा बन जाता है जो हमें अपने दुल्हे से नही मिलने देता। बिना इश्क मे इलम वैसे ही है; जैस बिना तेल के दीपक मे रखी रूई भी बती को माचिस की तीली जलाकर रोशनी करने का प्रयास करना। क्यां परिणाम होगा?कहने की जरूरत नही, आप सभी जानते ही है। महामती जी आगे क्या कहते है

ना चाहू मैं बुजरकी, ना चाहू खिताब खुदाम। दृष्टव्यः

इश्क दीजे मोहे आपनो, मोहे पाछी सो मुदाम।।

हे प्रियतम मुझे बुजरकी, खिताब कुछ नंही चाहिए मुझे आप अपना इश्क दे; मुझे बस वही चाहिए।

''इश्क वसे पिया के अंग, इश्क रहे

पिउ के संग।

प्रेम बसत पिया के चित्त, इश्क अखंड हमेश नित।। प्र.1चौ.19

धनी जी को इश्क भावे, इश्क बिना कछु न सोहावे।

ये ना कहियो कोई जन, धनी पाया इश्क विन।।

यह तो स्पष्ट ही है कि इश्क के बिना धनी नही मिलने वाले इलम और इश्क दोनों ही जरूरी है। बिना इलम के इश्क नही होता; बिना इश्क के धनी नही मिलते।

जो इश्क उपजे नही, रूहे बैठे क्यों कर ।

हक अर्श के बेशक होएके, क्यो रहे अर्श बगैर।।

तारतम वाणी के द्वारा राज जी व अर्श के बारे में बेशकी इलम प्राप्त होने पर भी रूह इस प्रकार से अर्श के बगैर कैसे रह सकती है। हम यह कह कर पीछा नही छुडा सकते कि श्री राज जी का जब हुक्म होगा तभी इश्क आएगा। जिस इश्क रबद के कारण यहाँ माया का खेल दिखाने साहेब लाए है धनी ने वाणी मे कहा भी है––

इश्क क्यो न उपजे, रूहो करना सोई उद्यमृ।

राह सोई लिजिए, जो आगू हादिए धरे कदम।।

अगर रूह प्रयास करे तो इश्क क्यो नही उत्पन होगा?हमारे हादि ने जो राह दिखाई उसी राह पर अपने कदम बढाने होंगे। तभी इश्क उत्पन होगा।

सुन्दर साथ जी हम माया को प्राप्त करने के लिए। सुबह से शाम तम जी तोड महेनत है। मायावी रिश्तो को निभाने के लिए क्या–क्या नही करते। अगर कोई माने यहाँसे कुछ दुरी पर घना जगंल है उसे पार करने पर रत्नों की खान है जगंल में जोसिम है कोई जानवर भी मिल सकता है, पर अगर वहाँ तक पहुँच गये तो माला – माल हो जाओगे कोई व्यक्ति अपनी जान की परवाह न करते हुए उस खान तक पहुचने का उतम प्रयास करेगे कि अगर कुछ रत्न मिल गए मेतो जिन्दगी खुशहाल हो जाएगी। पर सुन्दर साथ जी जो बेशकिमती, अनमोल, करोडो रत्ना से भी अधिक मूल्यवान खजाना के रूप मे हमारे पास है उसे पाने के लिए हम कितना प्रयास करते है। तारतम वाणी से राज जी एवं परमधाम रूपी हमारी अनमोल निधियों

के विषय मे जानकारी होने के पश्चात भी अगर हम उसे पाने का प्रयास नही करते तो कभी हम सुन्दर साथ की है। अशर सुन्दर साथ का यही प्रश्न होता है कि हम ध्यान लगाने बैठते है, पर ध्यान लगता ही नही कुछ और दिखता है उस वृद्धा की तरह छटपटा कर आँखे खोल लेते है और सोचते है कि इसमें अच्छा तो तारतम का जाप ही कर लेते है मेहर सागर ही पढ़ लेते है बाहर ही उश्ने ढूढने का प्रयास करते है जैसे उस वृद्धा का सुई ढुढने के लिए झोपड़ी में ही प्रकाश करना पडेगा वैसे ही भी उस प्रियतम का दिदार करने के लिए अपने अन्दर प्रेम करना ही पडेगा कबीर जी ने कहा –

पोथी पढ–पढ जुग भयां, पण्डित भया न कोई।

ढ़ाई आखर प्रेम के, पढे सो पण्डित होय।।

वाणी में भी कहाँ है–––

पंथ होवे कोट कलप, प्रेम पहोंचावे मिने पलक ।

जिस परमात्मा के दर्शन के लिए प्रकाश हिन्दुस्तानी में आपने पढा ही है

या बाणी के कारने कई करे तपसन।

या बानी के कारन ,कई पीवे अगिन।।

या बानी के कारने, कई भैरव झंपावे।

या बानी के कारने, तिल तिल यह कटावे।।

हमें तो इतनी कठिन तपस्या साधता नही करनी सिर्फ उनके प्रति प्रेम से परिपूर्ण हो कर; विरह लेकर उनमें दर्शन का प्रयास करना है क्यों किं वो तो हमारे दिल को ही अर्श करके बैठे है

प्राणाधार सुन्दर साथ जी, हम भी श्री राज जी महाराज व परमधाम के 25 पक्षों में विचरण करना चाहते है। अपनी उस अनमोल निधी को पाना चाहते है। जो हमसे खो गई है; तो हमे अर्न्तमुखी होना पडेगा। माया की चाहनाओं से मुख मोडकर, अपने अन्तस्करण को सभी विकारों से रहित कर निर्मल बनाकर धनी पर अटूट श्रद्धा, विश्वास, इमान रखते हुए वैराग्य पूर्ण भावना से उसे पुकारना होगा वो हमसे दूर नही है दूरी तो हमने बताई हुई है।

एही अपनी जागनी,जो याद आवे निजसुख।

इश्क याही से आवही, याही से होइए सन्मुख।।

ज्योति जी, सिरसा

आत्म-प्रबंधन

वर्तमान समय में व्यक्ति विभिन्न प्रकार के कार्यों में इस प्रकार व्यस्त है कि मानव–जीवन के आधारभूत आत्मतत्व विस्मृत होते जा रहे हैं। व्यक्ति सभी अपेक्षा ओं को पूरा करते – करते स्वयं की उपेक्षा कर रहा है। इस उपेक्षा में शरीर, मन से लेकर आत्मा तक की उपेक्षा सम्मिलित है। स्व की उपेक्षा, अन्य लोगों और पदार्थों की अपेक्षा के चलते मानव–जीवन चिंतामग्न, तनावग्रस्त व व्यग्र है। इसका परिणाम हम समाज में बढ़ते एकाकीपन और मूल्यहीनता के रूप में देख सकते हैं। आज के दौड़ते जीवन में मानव इधर–उधर भागते हुए श्रम बहुत कर रहा है। फिर भी उसकी आधारभूत मूल उत्पादता शून्यता की ओर बढ़ रही है। जीवन का दीर्घ कालखंड बिताने के बाद जब व्यक्ति अपने जीवन का सिंहावलोकन करता है तो उसे एक अपूर्णनीय खालीपन दिखाई पड़ता है। इस रिक्ति का कारण व्यक्ति के आत्म –प्रबंधन का अभाव है। व्यक्ति अन्य अनेक कार्यों का प्रबंधक तो बनता है, पर अपने जीवन व अपने मानस के प्रबंधन में असफल होता है और यही प्रबंधन की असफलता उसे आत्मस्थ नहीं होने देती और वह अवसाद का शिकार होकर मानसिक पीड़ा भोगते हुए एकाकी जीवन जीने को विवश होता है। एकाकीपन असुरक्षा की भावना को जन्म देता है और यह भावना विभिन्न सामाजिक अपराधों का कारण बनती है। इस प्रकार पूरा समाज इससे प्रभावित होता है।

भगवतगीता आत्मा के भी व्यवस्थापन का मार्ग प्रशस्त करती है। गीता आत्म–प्रबंधनपरक बुद्धि को जाग्रत करने वाला महानतम ग्रंथ है, जो व्यक्ति को कुछ क्षण रूककर सोचने और आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।गीता में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को बताया गया ज्ञान, भक्ति और कर्म का मार्ग उपदेश मात्र नहीं, बल्कि जीवन–व्यवस्थापन का गूढ़तम सूत्र है। आज व्यक्ति के आत्म– प्रबंधन की आवश्यकता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि व्यक्ति के आत्म–प्रबंधन द्वारा समाज व राष्ट्र का आत्म–प्रबंधन होता है और विभिन्न पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं से मुक्ति मिलती है। जीवन सहज, सरस होता है। स्पष्ट है कि आत्म–प्रबंधन से व्यक्ति का ही नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र का कल्याण होता है। वस्तुतः आत्म–प्रबंधन से आत्मनुशासन आता है।

लेखक
विद्यार्थी–शंशांक जी

श्रेष्ठ कर्म

प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्म करना चाहिए। कर्म से भागने वाले कायर होते हैं। अर्जुन जब युद्ध से भागने लगे तो श्रीकृष्ण ने उन्हें कायर तक कह डाला। कर्म महत्वपूर्ण है। हाथ का काम कर्म करना है। इसी हाथ से किसी पीड़ित की सेवा कर सकते हो, इसी हाथ से किसी का गला दबा सकते हो। अपनी वाणी से किसी को शीतल बना सकते हो तो किसी को दुखी बना सकते हो। हाथ एक ही है। मुंह भी एक ही है, लेकिन कर्म का फल अलग–अलग है। आप अपने शरीर से किसी की सेवा करें या किसी को सताएं, यहां शरीर प्रधान नहीं है। शरीर से जो कर्म हो रहा है, वह प्रधान है। शरीर से मंदिर जाकर भगवान की सेवा करें, संतों की चरण–वंदना करे या कहीं गलत जगह पर जाकर अनुचित कार्य करें। यहां शरीर तो एक ही है। कर्म अलग–अलग है। इस कर्म को कराने वाला मन सारा खेल, खेल रहा है। इसलिए जगदगुरु शंकराचार्य कहते हैं कि आपका मन ही आपके बंधन का कारण है। मन से ही आप बंधे हो इसलिए इस मन के जाल में मत फसें। गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मन बड़ा चंचल है। 'हे अर्जुन इंद्रियों का राजा मन है। तुम्हारी दसों इंद्रियों का मालिक तुम्हारा मन है। मन का आदेश पाकर ही तुम्हारी इंद्रियां अपराध करती हैं। इसलिए मन की बात मत मानना। तुम मन की बातों को पहले अपनी बुद्धि से पूछ लेना कि यह ठीक है कि नहीं।

मन को बुद्धि से नियंत्रित करके कर्म करना, लेकिन बुद्धि पर भी पूरा भरोसा मत करना। ऐसा इसलिए, क्योंकि बुद्धि भी विध्वंस का मार्ग बताती है। इसलिए हे अर्जन! बुद्धि को अपने विवेक से नियंत्रित करना। विवेक से पूछकर जो भी करोगे उसका फल शुभ होगा। नीयत पर निर्भर करता है कि जिस काम को कर रहे हो उसमें लक्ष्य क्या है। यह तुम्हारे उदेश्य पर निर्भय करता है। अब तो विद्यालयों में भी सरकार का आदेश आ गया है कि किसी बच्चे को अपमानित न करें। इसके लिए अध्यापक को सजा मिल सकती है। यहां एक प्रश्न उठता है कि अपने बच्चों को उनके मन के विरुद्ध दबाना, अन्हें अपमानित या प्रताड़ित करना क्या मानसिक अत्यचार नहीं है।

लेखक
विद्यार्थी–अशोक जी

गरीब कौन

एक धनवान को अपने पैसों पर बड़ा घमंड था। उसने परिवार वालों के लिए दुनिया भर की सुविधाएं जुटा रखी थीं। उसके घर में वह सब कुछ था, जो आरामतजब जिंदगी के लिए आवश्यक होता है। वह अमीर आदमी चाहता था कि उसने जो सुविधाएं परिवार वालों को दी हैं, उन्हें लेकर वे उसकी तारीफ करें, अहसान मानें।लेकिन उस अमीर का बेटा था कि पिता के पैसों का महत्व ही नहीं समझता था। अमीर ने सोचा कि जब तक उसका बेटा गरीबी और अभावों को नहीं देख लेगा, तब तक वह उसके धन और शानो–शौकत का महत्व नहीं समझेगा। एक दिन उसने बेटे से पूछा कि क्या वह उसके साथ गांव की सैर पर चलेगा?बेटा मस्तमौला था, कुदरत को करीब से देखने के लिए वह खुशी–खुशी तैयार हो गया।अमीर पिता उसे लेकर एक ग्रामीण के घर पहुंच गया।ग्रामीण एक जमाने में उसका कर्जदार हुआ करता था। उस गांव वाले ने अपनी हैसियत से अमीर और उसके बेटे की खूब आवभगत की।बेटा अपने बाप के साथ सारा दिन गांव की गलियों और खेतों में घूमता रहा।

रात हो चली थी। वापसी की यात्रा में बाप ने बेटे से पूछा, कि कैसा लग रहा है?बेटे ने जवाब दिया, बहुत अच्छा। अमीर को लगा कि गरीबी के रंग देखने के बाद बेटे को कार में अमीरी के सुकून का अहसास हो रहा होगा।उसने मुस्कराते हुए पूछा,तुमने देखा कि ग़रीब कितनी मुश्किल से गुजर–बसर करते हैं?बेटे ने कहा, हां। अमीर ने थोड़े अहंकार भरे शब्दों में पूछा, तो इससे तुम्हें क्या सीख मिली?पहले की तरह मस्ती भरे अंदाज में बेटे ने उत्तर दिया, डैड, मैंने देखा कि हमारे यहां सिर्फ एक कुत्ता है, पर उनके पास दसियों हैं। गांव के सारे कुत्ते उनके वफादार साथी हैं। हमारे घर के भीतर एक छोटा स्वीमिंग पूल है, पर उनके पास एक पूरा तालाब और साथ ही झरना भी है। हमारे बगीचे में बिजली के लैंप लगे हैं, लेकिन उनके आंगन के ऊपर लाखों तारे टिमटिमाते हैं। मैंने उनके घर में पाचक गोलियां नहीं देखीं, लेकिन हमारे घर में तो पूरा दवखाना इकटठा हो गया है। हम अपने घर तक सीमित हैं, किंतु उनके लिए सारी दुनिया खुली है।

बेटे ने बोलना बंद कर दिया था, पर पिता भी अब अवाक हो गया था। कहां तो वह बेटे को सिखाने लाया था और कहां बेटे ने ही उसे जिंदगी का पाठ पढ़ा दिया था।

बेटे ने कहा, मुझे यह दिखाने के लिए बहुत–बहुत धन्यवाद डैड कि वाकई हम कितने निर्धन हैं।

सबक – खुशी साधन–सुविधाओं पर नहीं, बल्कि नजरिये पर निर्भर करती है।

प्रणाम जी

सच्चा सुख

आजकज हम मकान, संपति, भौतिक पदार्थों को धन मानते हैं और अस्थायी मूल्यों के इन पदार्थों के पीछे पागलों की तरह दौड़ते हैं, किंतु वह पदार्थ वास्तविक अर्थों में धन नहीं होता जो हमें केवल इंद्रिय सुख प्रदान करे। चरित्र हमारा धन है और अच्छा आचरण खजाना। ईश्वरीय ज्ञान इन दोनों का मूल आधार है। हमें इस चिरस्थायी, मूल्यवान और अनंत अपार धन, अर्थात ईश्वरीय ज्ञान प्राप्ति के बजाय क्षणिक सुख के अस्थायी साधनों के पीछे नहीं भागना चाहिए। हमें यह भी जान लेना चाहिए कि जो लोग हमारे देश में किसी समय अति सामान्य स्थिति में थे, वे राजाओं की स्थिति में पहुंच गए हैं। वहीं कुछ लोग जो धन–संपत्ति और वैभव के अधिपति थे वे आज सामान्य व्यक्ति बन गए हैं, इसलिए हमें स्थायी सुख और वास्तविक आनन्द को बदलते रहने वाले सुख के समान नहीं समझना चाहिए और

सच्चे सुख को प्राप्त करने के ही प्रयत्न करने चाहिए। जब तालाब पानी से भरा होता है, उसमें हजारों मेंढ़क होते हैं, किन्तु जब पानी सूखता है तो मेंढ़क उछलकर बाहर भाग जाते है। इस प्रकार इस संसार में जब किसी के पास धन और सत्ता होती हैं, तो लोग उसके चारों ओर एकत्रित हो जाते हैं, किन्तु जब वही व्यक्ति मुसीबत में फंसा होता है तो उसके घनिष्ठतम मित्र भी उसका साथ छोड़ देते हैं। मनुष्य का यही परम कर्तव्य है कि वह इस बात को जाने कि वह क्या है जो उसका साथ छोड़ देता है, और वह क्या है जो कभी उसका साथ नहीं छोड़ेगा। उसे उस निधि को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। रावण, हिरण्यकश्यप जैसे अनेकों लोगों कें उदाहरण हमारे सामने आते है, जो भौतिक वैभव, धन, सम्पत्ति और सत्ता के मद में सबको अपमानित करते थे। उन सबका अन्त में घोर पतन हुआ।

प्रणाम जी

भारतीय संस्कृति की सनातनता

जीवन के प्रति दृष्टिकोण जिसका प्रकटीकरण आचार-विचार के रूप में होता है, को समग्र रूप में ''संस्कृति'' कहा जाता है ! जहां सभ्यता बाह्य विकास है, वहीं संस्कृति आंतरिक ! भारत में पैदा होकर विकसित हुयी संस्कृति को भारतीय संस्कृति कहा जाता है! इसके चार आधार हैं - एकता,समता,शुचिता एवं ममता !

भारतीय संस्कृति मे मानव,राष्ट्र एवं सृष्टि के सभी आयामों के समग्र विकास की अवधारणा एवं क्षमता समाहित है ! ऐसा अन्य संस्कृतियों में मिल पाना कठिन है ! भिन्न - भिन्न परिस्थितियों एवं आवश्यकता वाले विशाल राष्ट्र एवं विश्व में सभी को एक विधान एवं नियम से चला पाना संभव नही है। इसलिए भारतीय संस्कृति में वह लचीलापन और उदारता है, जो औरों के मूल्यों को आत्मसात कर लेती है, परंतु सनातन मूल्यों के परित्याग किए बिना। हजारों वर्षों तक विदेशी सत्ताओं के अधीन रहने पर भी इसने अपनी अक्षुण्णता बरकरार रखी है ! यूनानी, अफगानी, हूण, मुगल और अंग्रेजी शासनकाल के हिंसा, कुचक्र और षडयंत्रों के तमाम आघातों और अवरोधों के बाद भी भारतीय संस्कृति ने अपनी मौलिकता को बनाए रखा है। कदाचित इसी कारण प्रख्यात कवि इकबाल ने लिखा है-

यूनान,मिस्र,रोमा,सब मिट गए जहां से!
अब तक मगर है बाकी, नाम-ओ-निशां हमारा!
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी !
सदियों रहा दुश्मन, दौरे-ए-जहां हमारा !

भारतीय संस्कृति बहुतों की नापसंद रही और इसे नष्ट करने की तमाम कोशिशें भी की गयीं! इसके विनष्ट न होने का मूल कारण था इसका आध्यात्मिक आधार,सार्वभौमिकता और मानवीयता! किसी भी तरीके से मानवीय चेतना का समग्र विकास हो और राष्ट्रीय एवं वैश्विक चेतना का उदय हो यही तो इस संस्कृति का ध्येय है। यह धर्म को आचार के बंधन से मुक्त कराकर स्वतंत्र करती है। प्रकृति और स्वभाव को धर्म घोषित कर उसको यथाभूत रूप में देखने,जानने और अनुभव करने की प्रेरणा देती है! सभी अच्छी अवधारणाओं को स्वीकार करती है! किसी भी संस्कृति की निंदा से परहेज करती है।

धर्म संस्कृति का अभिन्न अंग है! जो भी धारण करने,ग्रहण करने और व्यवहार में लाने योग्य है, वह सभी धर्म है! सार रूप में इसे निम्नवत बताया गया है ---

धृतिः क्षमा दमोस्तेयम शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकम धर्म लक्षणम।।

धैर्य,क्षमा,दया(मनः संयम),चोरी न करना,शौच (आंतरिक एवं बाह्य पवित्रता), इंद्रियनिग्रह (विषयों के अधोगामी प्रवाह को रोकना),धी (विवेक बुद्धि),विद्या (आत्मज्ञान,सत्यकर्मों में प्रवृति),सत्य और अक्रोध! ये दस धर्म के लक्षण हैं।

सातत्य,निरंतरता,और स्थायित्व वाली भारतीय संस्कृति को पाश्चात्य संस्कृति से प्रतिस्थापित करने की साजिश कामयाब न हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि बाहर से आई संस्कृतियों का अंधानुकरण न किया जाय और जागृत विवेक सहारे अपनी संस्कृति के अस्तित्व को संरक्षित रखा जाय!

सुन्दरसाथ से अनुरोध

धाम धनी के लाडले सुन्दरसाथ जी आप सभी को यह विदित होगा कि हमारी 'तारतम मंजरी मासिका पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य जन–जन के हृदय में सत्य ज्ञान का प्रकाश एवं श्री प्राणनाथ जी के वाणी को प्रचारित करना है।

अतः इस पुनीत कार्य में आपकी सहायता अपेक्षित है, तारतम मंजरी पत्रिका में लेखों की कमी है, यदि आपके के अन्दर किसी भी प्रकार के सद्विचार उत्पन्न होते हैं तो अपनी लेखनी के द्वारा उन विचारों को लेखों में परिवर्तित कीजिए और अपने सद्विचारों को इस पत्रिका के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाइए।

विनम्र निवेदन

धाम धनी के लाडले सुन्दरसाथ जी! वर्तमान समय में श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा में शिक्षण, साहित्यिक एवं निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। जिन सुन्दरसाथ ने इन कार्यों के लिए अपनी सेवाएं लिखवायी है या स्वतः उनके मन में सेवा करने की इच्छा है, कृपया वे इन खातों में धनराशि भेजने का कष्ट करें। इस बात का ध्यान रखा जाय कि जिस सेवा की धनराशि भेजी जा रही है, मात्र उसी खाते की C.B.S.A/C संख्या में भेजें।

प्रणाम जी

सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया

1. खाता धारक का नाम–श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रष्ट
   खाता संख्या–3290805513
2. खाता धारक का नाम–श्री ज्ञानपीठ प्रकाशन
   खाता संख्या– 3290804553

पता–शाखा–सरसावा, सहारनपुर उ. प्र.
247232
MICR-Code" 247016005
IFSC CODE-CBIN0282531

सामान्य खाता संख्या
१३३५०००१००१११९१६
पंजाब नेशनल बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.
RTGS/NEFT IFS
CODE - PUNB0133500

साहित्य खाता संख्या
१३३५०००१००११८७५१
पंजाब नेशनल बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.
RTGS/NEFT IFS
CODE - PUNB0133500

भवन निमार्ण खाता संख्या
३४९७११८८७६७
भारतीय स्टैट बैंक
(११४३६) सरसावा, सहारनपुर
उत्तरप्रदेश, पिन- २४७२३२
IFS CODE- SBIN0011439

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा से प्रकाशित साहित्यों की सूची

क्र. स.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
1.	किरंतन टीका	300.00
2.	खिलवत टीका	150.00
3.	सागर टीका	170.00
4.	श्रृंगार टीका	300.00
5.	सिन्धी टीका	150.00
6.	परिक्रमा टीका	275.00
7.	परिक्रमा टीका (अंग्रजी)	350.00
8.	विद्वत्दमनी	200.00
9.	धाम सुषमा	60.00
10.	पटदर्शन	200.00
11.	दोपहर का सूरज (हिन्दी)	60.00
12.	दोपहर का सूरज (अंग्रेजी)	80.00
13.	प्रेम का चाँद	65.00
14.	बोध मंजरी (हिन्दी)	15.00
15.	बोध मंजरी (अंग्रेजी)	15.00
16.	बोध मंजरी (नेपाली)	30.00
17.	ज्ञान मंजूषा	20.00
18.	हमारी रहनी	50.00
19.	अमृत बिन्दु	10.00
20.	सत्यांजलि	40.00
21.	बाल युवा संस्कार	10.00
22.	संस्कार पद्धति	15.00
23.	निजानन्द चित्रकथा	30.00
24.	चितवनी	05.00
25.	चितवनी नक्शा	30.00
26.	नित्य पाठ (चौपाई)	15.00
27.	नित्य पाठ (बीतक)	05.00
28.	मेहर सागर	10.00
29.	श्रृंगार के मोती	15.00
30.	सागर के मोती	10.00
31.	अनमोल मोती	05.00
32.	स्वास्थ्य के प्रहरी	30.00
33.	अनमोल मोती तफसीरे हुसैनी	50.00
34.	जामिल–ए–मारिफल	30.00
35.	फरमान	30.00
36.	बुलंद मुकदमा बड़ा मसौदा	40.00
37.	शब–ए–मेअराज	15.00
38.	शेख जी मीर जी का बयान	20.00
39.	Supreme Truth God	20.00
40.	सी. डी., डी. वी. डी. तथा एम. पी थ्री. (गायन एवं चर्चा)	
41.	जागो और जगाओ	100.00
42.	निजानन्द योग	60.00
43.	ब्रह्मवाणी चर्चा	40.00
44.	सेवा पूजा	30.00
45.	मुख्तार–ए–हिंद	20.00
46.	Nijanand School	120.00
47.	श्री मुखवाणी संगीत (राग सहित)	150.00
48.	प्रश्नमाला	05.00
49.	प्राणनाथ महिमा (हिन्दी)	20.00
50.	प्राणनाथ महिमा (गुजराती)	20.00
51.	बोध मंजरी (गुजराती)	15.00
52.	सिनगार (गुजराती)	300.00
53.	सागर (गुजराती)	170.00
54.	चितवनी (गुजराती)	05.00
55.	कैलेंडर	10.00
56.	स्टीकर (प्रणाम जी)	30.00
57.	बड़ा स्टीकर (प्रणाम जी)	125.00
58.	बोध मंजरी (उड़ीया)	15.00
59.	श्री मुखवाणी संगीत	60.00